जन वाचन आंदोलन
बाल पुस्तकमाला

" किताबों में चिड़ियाँ चहचहाती हैं
किताबों में खेतियाँ लहलहाती हैं
किताबों में झरने गुनगुनाते हैं
परियों के किस्से सुनाते हैं
किताबों में रॉकेट का राज है
किताबों में साइंस की आवाज है
किताबों का कितना बड़ा संसार है
किताबों में ज्ञान की भरमार है
क्या तुम इस संसार में नहीं जाना चाहोगे?
किताबें कुछ कहना चाहती हैं
तुम्हारे पास रहना चाहती हैं "

-सफ़दर हाश्मी

ज़्यादातर स्कूल बच्चों के लिए एक कच्ची जेल होते हैं। परंतु डेविड का नीलबाग कुछ अलग ही था। अपने देश में, गांव के बच्चों को, विश्व-स्तर की उम्दा और क्वालिटी शिक्षा देने का नीलबाग अपने जैसा एक अनूठा प्रयास था। स्कूल जाएं या न जाएं, इस बात का निर्णय नीलबाग में बच्चे खुद ही लेते थे। बच्चों को अपनी मनमर्ज़ी के विषय चुनने का अधिकार था। बच्चे खुद की क्षमता और गति के अनुसार चीज़ों को सीख सकते थे। नीलबाग में पढ़ाई के साथ-साथ बच्चे मिट्टी, लकड़ी और तमाम हस्तकलाएं और कुशलताएं सीखते। नीलबाग का प्रयोग, डेविड ऑसबरॉ की, लीक से हटी ज़िंदगी की कहानी जैसा ही है।

भारत ज्ञान विज्ञान समिति

मूल्य: 12 रुपए B-60 Price 12 Rupees

नीलबाग के डेविड

एस. आनंदलक्ष्मी
रोज़लिंड विल्सन

इस किताब का प्रकाशन भारत ज्ञान विज्ञान समिति ने देश भर में चल रहे साक्षरता अभियानों में उपयोग के लिए किया गया है। जनवाचन आंदोलन के तहत प्रकाशित इन किताबों का उद्देश्य गाँव के लोगों और बच्चों में पढ़ने-लिखने की रुचि पैदा करना है।

नीलबाग के डेविड : ***David of Neelbagh***
संपादन : अरविन्द गुप्ता

जनवाचन बाल पुस्तकमाला के तहत
भारत ज्ञान विज्ञान समिति द्वारा प्रकाशित

साभार: 'विमर्श' पत्रिका

रेखांकन: अविनाश देशपांडे, एलिनेर वॉट्स
ग्राफिक्स : अभय कुमार झा

प्रकाशन वर्ष: 2001, 2003, 2006

मूल्य: 12 रुपए

Published by Bharat Gyan Vigyan Samithi
Basement of Y.W.A. Hostel No. II, G-Block
Saket , New Delhi - 110017
Phone : 011 - 26569943
Fax : 91 - 011 - 26569773
email: bgvs@vsnl.net

बच्चों का बाग – नीलबाग

ज़्यादातर स्कूल बच्चों के लिए एक कच्ची जेल होते हैं। सच बात तो यह है कि बच्चे स्कूल जाना ही नहीं चाहते हैं। परंतु उनके मां-बाप उन्हें स्कूलों में ढकेलते हैं। स्कूल जाएं या न जाएं, इस बात का निर्णय बच्चों के हाथों में नहीं होता है। आज सरकार गांव-गांव में स्कूल खोल रही है। परंतु इन उबाऊ स्कूलों में जाने की बजाए बच्चों को बाहर की दुनिया में ही ज़्यादा मज़ा आता है।

पिछले बीस सालों में मुझे 1,200 से भी अधिक स्कूलों को देखने का मौका मिला है। नीलबाग उसमें से सबसे नायाब था। उसकी खुशबू आज भी मेरी रूह से चिपकी है। मैं नीलबाग अलग-अलग कारणों से तीन बार गया और वहां की यादें मेरे ज़हन में आज भी तरोताज़ा हैं।

नीलबाग गांव के बच्चों के लिए था। वहां बच्चे इसलिए आते क्योंकि वो उनके लिए शायद दुनिया की सबसे रोचक जगह थी। स्कूल शुरू होने से एक घंटा पहले ही बच्चे स्कूल में आकर अपना डेरा जमा देते थे। डेविड चाहते थे कि बच्चे अपने गांव में ही रहें। शायद इसलिए उन्होंने बच्चों के लिए नीलबाग में कोई होस्टल नहीं खोला। होस्टल में रहने से बच्चों का गांव से अलगाव होने का डर था। शाम को स्कूल खत्म होने के बाद भी बच्चे घर नहीं जाते थे। वे स्कूल में ही जमे रहते थे। जब काफ़ी रात हो जाती थी तो डेविड उन्हें प्यार से डांटते थे,

''तुमने दिनभर मेरा भेजा खाया है अब तो कम्बख्तों मुझे चैन की सांस लेने दो।'' उसके बाद डेविड रात के अंधेरे में किसी पाइॅड-पाईपर की तरह गाना गाते हुए बच्चों को गांव तक छोड़ आते।

नीलबाग में स्कूल एक लंबे कमरे में लगता था। कमरे की एक दीवार में पत्थरों की एक खुली अल्मारी बनी थी। अल्मारी के शेल्फ़ों पर तरह-तरह की पुस्तकें और अन्य शिक्षण-सामिग्री रखी होती थी। इसमें से अधिकांश सीखने के सामान को बच्चों और शिक्षकों ने मिलकर ही बनाया था। इस क्लास में पहली से दसवीं कक्षा तक के बच्चे एक साथ पढ़ते थे। क्लास में कोई लेक्चर नहीं होता था। बच्चे भिन्न-भिन्न विषयों पर अपने स्तर की किताबें चुनकर उन्हें अपनी रफ्तार से पढ़ते थे। किसी पुस्तक के समाप्त होने पर वो शेल्फ़ पर से उसी विषय की अगली पुस्तक उठाकर उस पर काम करते। जैसे कि किसी परिवार में बड़े बच्चे अपने छोटे भाई-बहनों को सिखाते हैं वैसे ही कक्षा में भी होता। अगर किसी बच्चे को कुछ समझ में न आता तो वो अपने से कुछ बड़े बच्चे से उस बात को समझ लेता। वैसे बच्चों की सहायता करने के लिए कक्षा में कोई शिक्षक भी होता था। बच्चों को अपनी गति से पढ़ने की छूट थी। यहां किसी बच्चे के लिए एक समय पर तीसरी की तेलगू, आठवीं की गणित और छठवीं कक्षा की अंग्रेज़ी पढ़ना संभव था।

नीलबाग एक अनूठा स्कूल था। यहां गांव के बच्चे पांच भाषाएं जानते थे - कन्नड, तेलगू, संस्कृत, हिंदी और अंग्रेज़ी। नीलबाग में बच्चे दुनिया की 10 भाषाओं के 150 गाने जानते थे। बच्चों की अभिव्यक्ति और उनका आत्मविश्वास दोनों ही देखने काबिल थे। जब कोई मेहमान नीलबाग आता तो बच्चे उनसे गीत सुनाने का आग्रह करते और जब तक मेहमान उन्हें दो नए गाने नहीं सुनाता तब तक उसे उठने नहीं देते। इनमें से कई बच्चे बाद में जाकर डाक्टर और इंजीनियर बने। आज़ादी के बाद,

गांव के बच्चों को विश्व-स्तरीय स्कूली शिक्षा देने का नीलबाग एक अनूठा प्रयास था। इस प्रयोग ने एक बात साफ़ सिद्ध कर दी - गांव के बच्चों में भी अद्भुत प्रतिभा है। उन्हें अगर सही माहौल मिले तो वे सीखने में दुनिया में किसी से कम नहीं हैं।

नीलबाग को डेविड ने शुरू किया। 1984 में उनकी मृत्यु के बाद शायद नीलबाग की आत्मा भी धाराशाही हो गई। डेविड के बाद उनके पुत्र निकोलस और पत्नी डोरीन ने दो-तीन साल नीलबाग को चलाया परंतु अंत में वो नीलबाग को कृष्णमूर्ति फाउंडेशन को सात लाख रुपए में बेंचकर इंग्लैंड वापिस चले गए। कृष्णमूर्ति फाउंडेशन ने नीलबाग की गरिमा को दुबारा स्थापित करने के काफ़ी प्रयास किए परंतु वो इसमें असफल रहे। वो डेविड का कोई विकल्प नहीं खोज पाए। डेविड का व्यक्तिगत पुस्तक संकलन एकदम लाजवाब था। उनके पास दुनिया भर के विषयों पर तकरीबन 7000 चुनिंदा किताबें थीं।

डेविड ने अपनी मर्ज़ी के मुताबिक अपनी ज़िंदगी जी। वो अद्भुत प्रतिभा के धनी थे। डेविड अपने सपने के नीलबाग को शायद इसी लिए चला पाए क्योंकि वे धन के लिए किसी के मुहताज़ नहीं थे। विदेशी ऍड-ऐजेंसियों से वो दूर थे। डेविड और उनके पुत्र निकोलस ने मिलकर करीब सौ से अधिक पुस्तकें लिखीं जिनमें से अधिकांश को, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस और ओरियेंट लौंगमैन ने छापा है। इन पुस्तकों पर उन्हें भारी मात्रा में सालाना रायल्टी मिलती थी और उसी से स्कूल का अधिकांश खर्च चलता था। आज भी नीलबाग ट्रस्ट को मिली रायल्टी से कुछ स्कूलों को सहायता मिलती है।

हाल ही के कुछ सालों में कृष्णमूर्ति फाउंडेशन ने नीलबाग को एक बंगलूर स्थित संस्था को सौंप दिया है। यह संस्था विकलांग बच्चों की सहायता के काम में लगी है। ❐

अरविन्द गुप्ता

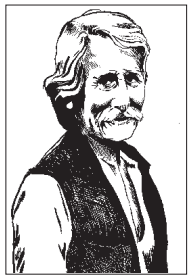

एक सच्चे शिक्षक के प्रयोग

एस. आनंदलक्ष्मी — हिन्दू 14 व 21 सितम्बर 1997

अनुवाद - देवयानी

पिछले दशक में स्कूल जाने लायक उम्र के सभी बच्चों को स्कूल की धारा में शामिल करने के लिए व्यापक अभियान चलाया गया। ***सबको शिक्षा*** जैसे कुछ सरकारी किस्म के नारे भी, इस अभियान का अंग बना दिए गए। सभी बच्चों को अनिवार्य अक्षर ज्ञान, अंक ज्ञान तथा कुछ व्यवसायिक दक्षता हासिल हो सके, यह सुनिश्चित करने के प्रयत्न को व्यापक जनसमर्थन भी मिला। हालांकि इस बात से सभी सहमत हैं कि लोकतंत्र में सबको शिक्षा मिलनी चाहिए, फिर भी इसे संभव बनाने के तरीकों पर लोगों में काफी मतभेद है।

एक मत के अनुसार मौजूदा सभी पाठ्यक्रम ग्रामीण बच्चों के लिहाज़ से बेहद अजनबी, अप्रासंगिक एवं अनुपयुक्त हैं। जो पुस्तकें ये बच्चे पढ़ते हैं या जो निबन्ध लिखने की उनसे अपेक्षा की जाती है उनमें उनके जीवन के अनुभव कहीं पर भी प्रतिबिंबित नहीं होते हैं। ऐसे में कोई ग्रामीण बालक जब प्राथमिक स्तर की परीक्षा उत्तीर्ण करके, पहली बाधा पार कर लेता है तो वो अपने परिवार से, अपने समाज से कट जाता है। अधिकांश शिक्षक शहरी होते हैं और ग्रामीण लोगों के प्रति उनके मन में कोई सम्मान का भाव नहीं होता। ज़ाहिर है, ऐसी हालत में किसी ग्रामीण बच्चे का शैक्षणिक अनुभव बहुत अच्छा हो पाए,

इसकी संभवाना बहुत कम हो जाती है। ऐसे में ग्रामीण विद्यालयों के लिए पाठ्यक्रम बनाने के लिए उनके रोज़मर्रा के जीवन में काम आने वाले मुहावरों का उपयोग करना होगा। फिर उनमें ऐसी क्षमताओं का विकास करना होगा जिनसे वे अपने ही परिवेश में बेहतर जीवन तलाश कर सकें।

एक वैकल्पिक नज़रिया यह है कि शिक्षा का प्राथमिक उद्देश्य, बच्चों को उन बातों से अवगत कराना है जो वह सामान्यत नहीं जान पाते हैं। शिक्षा ऐसी हो जो एक संकीर्ण, कम सुविधाओं तथा अवसरों वाले समाज में रहने वाले ग्रामीण बालक को आगे बढ़ने में सहायता प्रदान कर सके। इस नज़रिए के समर्थकों का यह मानना है कि हम जो शिक्षा प्रदान करें वह सुविधविहीन तथा सुविधासंपन्न बच्चों के लिए एक समान अवसर उपलब्ध करने वाली होनी चाहिए। एक अच्छी शिक्षा ही, समाज में व्याप्त असमानता से पार पा सकती है। डेविड ऑसबरॉ के नीलबाग स्कूल का प्रयोग इसी उद्देश्य को समर्पित था। ऐसे में, 5 सितम्बर को शिक्षक दिवस मनाते वक्त इस अद्‌भुत अध्यापक डेविड ऑसबरॉ को स्मरण करने से बेहतर और क्या हो सकता है।

डेविड ऑसबरॉ के निधन को आज चौदह वर्ष बीत चुके हैं। उनका नाम और शख्सियत ऐसी थी जिसे भुला पाना आसान नहीं है। इतने वर्षों बाद भी क्यों कोई डेविड से शिक्षा पर काल्पनिक संवाद करता है? मैं अपने आप से यह प्रश्न पूछती हूं। पर मैं यह भी जानती हूं कि यह सवाल केवल शब्दों का खेल भर है, क्योंकि इसका जवाब मेरे पास पहले से ही है।

डेविड ऑसबरॉ एक अद्‌भुत शख्सियत थे - गर्मजोशी से भरे जोशीले, रचनात्मक व्यक्ति और करिश्माई शिक्षक। पढ़ाने के प्रति उन्हें ज़बरदस्त मोह था लेकिन भारत में मौजूदा तमाम शिक्षा प्रणालियों से उनका मोहभंग हो चुका था। इसी मोहभंग की स्थिति ने उन्हें नीलबाग के विचार को बुनने तथा

उसे एक ठोस रूप देने की दिशा में आगे बढ़ाया। इस स्कूल की मूल अवधारणा विभिन्न दर्शनों से ली गई थी, लेकिन इसका कुल स्वरूप, विशुद्ध रूप से डेविड ऑसबरॉ का था, जो अपने आप में अनूठा था।

डेविड के निजी जीवन की संक्षिप्त जानकारी विभिन्न संदर्भों को समझने में सहायक होगी। डेविड ऑसबरॉ जन्म से अंग्रेज़, वर्ण से भारतीय और मिज़ाज से विश्व नागरिक थे। चालीस के दशक में हाई स्कूल की शिक्षा समाप्त करने के बाद, दूसरे विश्व युद्ध के अंतिम दौर में डेविड, रॉयल एँअर फोर्स में भरती हो गए और भारत भेज दिए गए। उस समय वो भारत के उस इलाके में रहे जो आज बांग्लादेश है। भारत के ग्रामीण जीवन, यहां के लोगों, तथा यहां के संगीत के साथ उनके प्याार और लगाव का ऐसा सिलसिला शुरू हुआ, जो अगस्त 1984 में, उनके निधन तक चलता ही रहा।

युद्ध समाप्त होने के बाद, डेविड ने, लंदन विश्वविद्यालय के भारतीय इतिहास तथा संस्कृति संबंधी पाठ्यक्रम में प्रवेश लिया। उन्होंने भारत लौटने के अपने लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए संस्कृत, हिंदी तथा उर्दू का अध्ययन किया। लंदन से इस पाठ्यक्रम में डिग्री लेने के बाद डेविड भारत लौट आए। शिक्षक होने की प्रबल इच्छा ने डेविड को जे. कृष्णमूर्ति द्वारा स्थापित ऋषि वैली स्कूल की तरफ ढेल दिया। कुछ वर्षों तक वहां काम करने के बाद डेविड, नीलगिरी के, ब्लू माउंटेन स्कूल में चले गए। बाद में वे मैसूर आ गए, यहां उन्होंने क्षेत्रीय अंग्रेज़ी महाविद्यालय स्थापित किया व कुछ समय तक उसकी सर्वोच्च ज़िम्मेदारी संभाली।

फिर वे ब्रिटिश काउंसिल के, अंग्रेज़ी को दूसरी भाषा के रूप में पढ़ाने के कार्यक्रम को चलाने वाले दल में शामिल हो गए। इस दल में उन्हें मद्रास में, कारपोरेशन के एक स्कूल में गरीब बच्चों के लिए पुस्तकें तैयार करने की ज़िम्मेदारी सौंपी गई। यहां उन्हें भारतीय बच्चों की ज़रूरतों के अनुरूप पुस्तकों एवं कार्य पुस्तिकाओं की योजना तैयार करने का मौका मिला। उनकी सरलता

और मज़ाकिए स्वभाव की छाप इन पुस्तकों के प्रत्येक पन्ने पर देखी जा सकती है – और उनके मौलिक चित्रों के कारण ही ये पुस्तकें बच्चों के लिए बेहद आकर्षक बनीं।

ब्रिटिश काउंसिल, जोकि ब्रिटिश उच्चायोग का एक अभिन्न अंग है, की ट्रांस्फर संबंधी एक नीति है। इस नीति के तहत कोई भी व्यक्ति एक स्थान पर पंद्रह वर्ष तक ही रह सकता है। डेविड को जब अगली पोस्टिंग के लिए भारत छोड़ने को कहा गया तो उन्होंने वालिंटरी रिटायरमेंट ले लेना ही बेहतर समझा। उन्होंने कर्नाटक के कोलार जिले में, आठ एकड़ ज़मीन खरीदी और वहां अपने नीलबाग के सपने को ठोस रूप देना शुरू किया। नीलबाग का पूरा प्रयोग, डेविड ऑसबरॉ की, लीक से हटी ज़िंदगी की, कहानी जैसा ही है। शायद स्वतंत्र भारत में, गांव के बच्चों को, विश्व स्तर की उम्दा और क्वालिटी शिक्षा देने का यह अपने जैसे पहला प्रयास था।

डेविड एक संपूर्ण व्यक्ति थे – उनका दर्शन उनके काम, उनकी जीवन शैली, उनके गीतों, उनके अध्यापन आदि तमाम कार्यों में दिखता था। ये तमाम चीज़ें एक दूसरे में गुथी हुईं थीं। नीलबाग शुरू करने के बाद डेविड ने यह कहना छोड़ दिया कि ''काश मैं ऐसा कर पाता!'' अब वो वही काम करने लगे जिसे वो वाकई में करना चाहते थे। अपनी अद्‌भुत प्रतिभा के अनुसार उन्होंने कई चीज़ें बहुत ही बेहतर ढंग से करीं।

सबसे पहले पेड़ लगाए गए। फिर उनके आस-पास डेविड के द्वारा तैयार डिज़ायनों व लौरी बेकर की सलाह के आधार पर, झोपड़ियां बनाई गईं। डेविड स्वयं एक कुशल बढ़ई थे और शुरुआत में कक्षाओं के लिए कमरे तथा कार्यशाला का डिज़ायन तैयार करने के साथ-साथ उनका निर्माण भी खुद उन्होंने ही किया था। इनके साथ ही परिवारों के रहने के लिए घर भी बनाए गए। परिसर की बाकी इमारतों का निर्माण पाठ्यक्रम का ही हिस्सा बन गया। कुछ महीनों के बाद बच्चों ने उस क्षेत्र के पारंपरिक गोल कमरे (सुतिल्ला) का निर्माण भी किया।

नीलबाग की अवधारणा, अध्ययन, अवलोकन, विचार तथा शिक्षण की कल्पना डेविड के लंबे अनुभवों से छनकर तैयार हुई थी। नीलबाग में आने वाले अक्सर पूछा करते कि यह स्कूल अन्य स्कूलों से कैसे भिन्न है? इस स्कूल का दर्शन क्या है? और क्या नीलबाग की अवधारणा को अन्य स्कूलों में इसी रूप में लागू किया जा सकता है? डेविड खुद पूरे उत्साह एवं सफ़ाई के साथ मज़ाक करते हुए इनका उत्तर देते थे।

वर्ष 1980 का एक कार्यदिवस। मैं सुबह नौ बजे नीलबाग पहुंची। फूस की छाजन वाली एक झोपड़ी, (जिसमें तीन से अट्ठारह साल तक की उम्र के 25 विद्यार्थी एक साथ बैठ सकते हों) के एकदम स्वच्छ वातावरण में बहुत मधुर स्वर में कुछ लोग गा रहे थे। डेविड आगे-आगे गा रहे थे। अन्य तीन शिक्षक उनका साथ दे रहे थे।

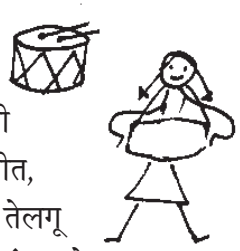

इन गीतों में एक चौका देनी वाली विविधता थी। गुजराती भजन, असमिया नाविक गीत, केरल का मछुआरा-संगीत, अंग्रेज़ी-प्रेमगीत, फ्रेंच तथा जर्मन लोकगीतों के साथ तेलगू भक्ति-संगीत सभी एक साथ प्रभावित हो रहे थे। यहां हमारे स्कूलों की तरह, प्रत्येक बच्चा, अपनी आवाज़ को सबसे ऊंचा सुनाने के प्रयास में नहीं लगा था, बल्कि सभी बच्चे एक लय तथा संयत आवाज़ में एक दूसरे के साथ स्वर मिलाकर गा रहे थे।

यहां प्रतिदिन सुबह को एक घंटा संगीत होता है जिसमें सभी बच्चे साथ होते हैं। इससे सभी को एक दूसरे के साथ मित्रता बनाने में मदद मिलती है। डेविड की यह स्पष्ट मान्यता थी कि कोई बच्चा अच्छा गा सके इसके लिए उसे अच्छी तरह से सुनना भी सिखाया जाना चाहिए। पाठ्यक्रम में भी इस बात को सिद्धांत के रूप में बताया गया था कि शांति के महत्व को समझकर ही कोई बालक ध्वनि के महत्व को जान सकता है। गीतों का संग्रह बढ़ता जाता क्योंकि संगीत जानने वाले प्रत्येक आगन्तुक से बालक, एक नया गाना गाने का अनुरोध करते। संगीत के घंटे के बाद बच्चे स्वयं अल्मारियों में रखी पाठ्यसामिग्री उठा लेते। यह सामिग्री इस तरह विकसित की गई थी कि बच्चे

अपने आप, अथवा अपने से बड़े बच्चों की सहायता से, इन्हें पढ़-समझ सकें। शिक्षक बच्चों की मदद के लिए अथवा उनका ध्यान रखने के लिए हमेशा मौज़ूद रहते लेकिन पाठ शुरू करने वाले व्यक्ति के रूप में नहीं।

अंग्रेजी और तेलगू में तैयार की गई इस खुद-करके-सीखने वाली सामिग्री का बड़ा हिस्सा कार्ड, पहेलियों तथा स्थानों व गतिविधियों के नामों से जुड़े शब्दों के खेलों का होता। डेविड व अन्य शिक्षकों द्वारा तैयार, चित्रों अथवा लिखित रूप में बहुत सावधानीपूर्वक तैयार की गई इस पाठ्यसामिग्री का वर्गीकरण उसकी जटिलता के आधार पर किया गया था। इससे बालक प्रत्येक अभ्यास को पूरा करते हुए एक निश्चित मार्ग पर आगे बढ़ सकते थे। बड़े बच्चों के लिए गणित की कक्षाएं आमतौर पर दोपहर में भोजन की छुट्टी के बाद रखी जाती थीं। यह इस बात पर बल देने के लिए किया जाता था कि अगर पढ़ाई का तरीका मज़ेदार हो तो दिन का कोई भी समय सीखने के लिए समान रूप से उपयुक्त हो सकता है।

पाठ्यक्रम के अन्य महत्वपूर्ण पक्षों में बालक-बालिकाओं को संगीत सिखाना व उसे कैसेट-प्लेयर पर बजाना, मिट्टी का काम करना व कुम्हार के चॉक पर बर्तन बनाना, बढ़ईगीरी का काम करना और वस्तुएं बनाना, कशीदा काढ़ना व क्रेयान(रंगीन चाक) तथा पानी के रंगों से चित्र बनाना सिखाया जाना आदि प्रमुख थे। ये लिंगभेद विहीन पाठ्यक्रम का, एक सुंदर नमूना था। इसने मानसिक और शारीरिक श्रम के बीच की दूरी को भी मिटाने का काम किया क्योंकि स्कूल की कार्ययोजना में हस्तशिल्प को बहुत महत्वपूर्ण तथा अनिवार्य स्थान दिया जाता था। हाथ से काम करना, उसमें दक्षता व अचूक सूक्ष्मता लाना, एक बार माटी हाथ में लेने के बाद एक कलात्मक वस्तु तैयार करने की लगन, आरी हाथ में हो तो सफाई के साथ लकड़ी को काटना, आदि को भी पाठ्यक्रम में उतना ही महत्व दिया गया था जितना भाषा अथवा गणित को।

शिक्षा केवल दिमाग में होने वाली प्रक्रिया नहीं है बल्कि वह पूरे व्यक्तित्व का निर्माण करती है। बेहतरीन शिक्षा तभी संभव है जब बच्चों को शिक्षकों तथा सहपाठियों के स्नेह के बल पर आत्मसम्मान को विकसित करने के अवसर मिले। शिक्षक तथा सीखने वाले के बीच ऐसा विश्वास तथा समझ किसी परिवार में भी मिलना मुश्किल है।

डेविड कहा करते थे कि उनके सामने अनुशासन की कोई समस्या आती ही नहीं थी क्योंकि अनुशासन पर वहां कतई ज़ोर नहीं था। नीलबाग में कोई नियम नहीं थे। सिर्फ एक आचारसंहिता थी जिसके पालन के आदेश नहीं दिए जाते थे बल्कि उदाहरणों के ज़रिए उसे अभ्यास में लाया जाता था। शिक्षक के लिए इसमें ढेरों चुनौतियां तथा ज़िम्मेदारियां थीं। शनिवार को सुबह 11 बजे का समय स्कूल सफ़ाई के लिए तय था। सभी शिक्षकों व छात्रों की यह साझी ज़िम्मेदारी थी। काम सबके बीच बंटे हुए थे और ज़िम्मेदारियां बदलती रहती थीं जिससे कि हरेक व्यक्ति की प्रत्येक काम करने की बारी आए। झाड़-पोंछ, धुलाई, कील गाड़ना, मरम्मत करना, पेंट करना, रद्दी जलाना, ब्लैक-बोर्ड पर कालिख रंगना, सभी काम निर्धारित क्रम के अनुसार होते थे। शनिवार के दिन वहां सब चुपचाप चींटियों की फ़ौज की तरह अपने-अपने काम में व्यस्त हो जाते। डेविड अपनी लुंगी को घुटनों तक मोड़कर लपेटे हुए, सीटी बजाते, कहीं पर अपने हिस्से के काम को अंजाम दे रहे होते।

कुल मिलाकर वहां न कोई काम नीचा था, न कम महत्वपूर्ण, न तो स्कूल का कोई पीरियड उबाऊ था और न कोई पाठ अनुपयोगी। डेविड का यही सिद्धांत था – जो कुछ भी किया जाए पूरी लगन और बेहतरीन ढंग से किया जाए।

एक और शिक्षा शास्त्रीय सिद्धांत जिसे नीलबाग में पक्की तरह अपनाया जाता था वो था वर्टिकल ग्रुपिंग का (यानि अलग-अलग उम्र के बच्चों का, एक ही साथ पढ़ना)। ज़्यादातर स्कूलों में उम्र के अनुसार कक्षाएं होती हैं और इसके पीछे मान्यता है कि एक ही उम्र के बच्चों को एक कमरे में बैठकर पढ़ाना आसान होता है। लेकिन डेविड ऐसी औपचारिक विधि से पढ़ाने में विश्वास नहीं रखते थे। वो सीखने के लिए सही वातावरण बनाने पर ज़ोर देते थे। वे अनेक बार, एक-एक बच्चे से अकेले बातचीत करते तो कई बार बच्चों के किसी समूह को एक साथ भी सिखाते। लेकिन उनका मानना था कि जब एक ही समूह में सभी उम्र के बच्चों को शामिल किया जाता है तो उनमें एक-दूसरे से सीखने की प्रवृति पनपती है और उनके बीच परस्पर प्रतिस्पर्धा कम रहती है। प्रतिभा के निखार के लिए कम्पटीशन हो इसके लिए नीलबाग की शिक्षा में कहीं कोई जगह नहीं थी। डेविड का मानना था कि समर्थ बनने की इच्छा रखना और कक्षा में दूसरों से बेहतर होने की इच्छा रखना, दो अलग-अलग बाते हैं और वे इनमें से पहली पर यकीन करते थे।

नीलबाग में कभी भी, एक समय में, तीस से अधिक बच्चे नहीं रहे। ज़ाहिर है, डेविड आकार को बड़ा बनाने में विश्वास नहीं रखते थे। लेकिन वे मानते थे कि कोई भी नीलबाग जैसा स्कूल चला सकता है। इसी लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए उन्होंने एक टीचर-ट्रेनिंग कार्यक्रम शुरू किया जिसके तहत एक समय में चार शिक्षकों को प्रशिक्षण दिया जाता था।

प्रशिक्षण के समय ट्रेनी अध्यापकों को नीलबाग में पढ़ाना पड़ता था। पर इसका अर्थ यह नहीं है कि उन्हें केवल विधियां सीखी जाती थीं और सिद्धांत नहीं। हर ट्रेनी को शिक्षा दर्शन, मनोविज्ञान तथा शिक्षाशास्त्र की कई पुस्तकों को पढ़ना होता था। उन्हें शिक्षा संबंधी अनेक काम करने होते थे जिनमें पढ़ी पुस्तकों की विवेचना भी शामिल थी। शिक्षकों को अपनी विचार प्रक्रिया को समृद्ध बनाने तथा ज्ञान को परस्पर बांटने के लिए सेमीनार, परिचर्चा, बहस

आदि के अनेक अवसर दिए जाते। यह सब इसलिए ज़रूरी था कि शिक्षक न केवल चिंतन की आदत डालें बल्कि अपने ज्ञान की सीमाओं का विकास भी कर सकें। शुरूआत में प्रशिक्षण की अवधि एक वर्ष ही रखी गई थी लेकिन बाद में डेविड ने यह महसूस किया कि इस दर्शन की समझ, सभी पुस्तकों के आलोचनात्मक अध्ययन तथा शिक्षण में पूर्ण आत्मविश्वास व दक्षता अर्जित करने के लिए कम से कम दो साल का समय दिया जाना चाहिए।

डेविड का मानना था कि कविता जीवन के लिए अनिवार्य है इससे अर्न्तदृष्टि पैनी होती है तथा यह संवेदना का विकास करती है। शिक्षा के सिद्धांतों के अनुसार डेविड, हर उस विषय पर बच्चों से चर्चा करते जिसे वो मूल्यवान मानते। सप्ताह में दो-तीन बार अंग्रेजी की कविताएं सुनाते - कभी खुद की लिखी हुई भी। ज़रूरत पड़ने पर वे मुहावरों की छवियों का भी खुलासा करते। धीरे-धीरे बच्चे स्वयं डेविड की निजी लाइब्रेरी से कविताएं चुनकर पढ़ने लगे। बाद के समय में अधिकांश बच्चे स्वयं भी अंग्रेजी में कविताएं लिखने लगे। ज़्यादातर बच्चों की कविताएं मुक्त ही होती थीं। जब बच्चे अपनी रुचि के विषयों पर तेलगू में भी कविताएं करने लगे तो डेविड को विश्वास होने लगा कि उनका लगाया पौधा अब फलने लगा है।

जो बच्चे सेकंडरी के स्तर पर पहुंचे वे आंध्र-प्रदेश की सेकंडरी परीक्षा में बैठे। जिन छात्रों ने मान्यता प्राप्त स्कूलों में अध्ययन न किया हो वे प्राईवेट छात्र के रूप में यह परीक्षा दे सकते थे। नीलबाग को परीक्षा बोर्ड से मान्यता नहीं मिली थी। परीक्षा के लिए बच्चों ने अंग्रेज़ी इतिहास व नागरिक शास्त्र विषय चुने, जिन्हें पढ़ने में उन्होंने नीलबाग के शिक्षकों की सहायता ली। इस दौरान भी, बच्चों से, कम से कम अपना एक तिहाई समय, गैर-परीक्षा गतिविधियों में बिताने की अपेक्षा की जाती थी। संस्कृत, डेविड का प्रिय विषय था और वे स्कूल में बच्चों को संस्कृत सिखाना ज़रूरी मानते थे। बच्चे अक्सर संस्कृत में संवाद, कविताएं अथवा लघु-नाटिकाएं पढ़ने का प्रयास करते थे।

रंगमंच से जुड़ी गतिविधियां भी पाठ्यक्रम का हिस्सा थीं। साल में एक या दो बार बच्चे शेक्सपीयर के किसी नाटक के, किसी एक दृश्य का मंचन करते। नाटक की वेषभूषा तथा अन्य तमाम सामिग्री बच्चे खुद ही तैयार करते। मंच पर, हाथों से, टार्च के द्वारा प्रकाश व्यवस्था की जाती, जिसका संचालन बच्चे आसपास के पेड़ों पर बैठकर करते। डेविड की पुरानी आस्टिन कार की हेडलाईट भी कई बार मंच को प्रकाशित करने के काम आती। इस सारे काम में सभी को बहुत लुत्फ़ आता। वे सभी पूरी मुस्तैदी के साथ एक अनुशासित टीम की तरह वेशभूषा तैयार करते, साज-सज्जा की व्यवस्था करते तथा अपनी भूमिका का निर्वाह करने में अभिनेताओं की मदद करते। कई बार बच्चे बंगलौर तथा मद्रास में, ब्रिटिश काउंसिल अथवा डेविड के मित्रों के घरों में भी, नाटक का प्रर्दशन करने जाते।

बच्चों को गृहकार्य दिया जाता लेकिन उसे पूरा करने के लिए निर्धारित समय के मामले में पर्याप्त लचीलापन था। अधिकांश बच्चे अपने माता-पिता के साथ एक-एक झोपड़ी में रहते जहां उन्हें गृहकार्य के लिए पर्याप्त जगह तथा समय मिलना संभव ही नहीं था। इसलिए शाम के समय बच्चे स्कूल आ जाते और यहां के कमरों में किसी बड़े व्यक्ति की सहायता के बगैर अपने होमवर्क को पूरा करते। रात साढ़े नौ बजे के बाद डेविड वहां आते और बच्चों के साथ-साथ चलकर उन्हें उनके घरों तक छोड़ आते।

नीलबाग के बारे में ऐसी और बहुत सारी जानकारियां दी जा सकती हैं। उनका सिलसिला चलता ही रह सकता है, पर अब हमें इसकी केंद्रीय विषयवस्तु को देखना चाहिए। कोई भी शिक्षक जिस बात को सबसे मूल्यवान मानता है उसे ही वह सबसे अच्छे ढंग से सिखा सकता है। शिक्षण केवल निर्देश देना नहीं है, यह किसी मूल्यवान चीज़ को सीखने वाले के साथ बांटना है। और शिक्षक का बच्चे के प्रति स्नेह पूर्ण व्यवहार यहां बहुत महत्वपूर्ण होता है। जब बच्चे को मेधावी, इच्छुक और उत्साहित माना जाता है तो वे इन अपेक्षाओं को पूरा भी करते हैं। प्रत्येक बच्चे की अपनी प्रतिभा, क्षमता अथवा कमज़ोरी हो सकती है।

एक अच्छी प्रणाली किसी भी बच्चे को अपनी रुचियों एवं क्षमताओं के श्रेष्ठतम विकास में मददगार होती है। शिक्षक को अपने विद्यार्थी की, सीखने की क्षमता में, पूरा विश्वास लेकर चलना होता है और तब प्रत्येक बच्चा अपनी योग्यता के अनुरूप स्वयं अपनी गति से चीज़ों को सीखता है। और ऐसे करिश्माई शिक्षक, जो संवेदनशील मनुष्य तथा उत्कृष्ट कलाकार भी हों, की मौज़ूदगी में एक बच्चे के व्यक्तित्व को असीम विस्तार मिल जाता है – एकदम सीमाहीन।

डेविड ऑसबर्न

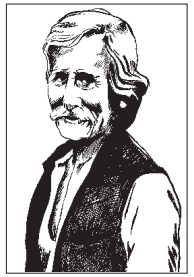

स्कूली शिक्षा – एक नई दृष्टि

डेविड ऑसबर्न के साथ रोज़लिंड विल्सन की बातचीत

इस साक्षात्कार के प्रकाशन के समय, इंडिया इंटरनेशनल सेंटर क्वार्टरली (खंड 10, अंक 1, 1983) पत्रिका के संपादक की एक टिप्पणी छपी थी – बच्चों की पुस्तकों के लेखक के रूप में डेविड ऑसबर्न का नाम सुपरिचित है। भारत में आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस द्वारा प्रकाशित उनकी पुस्तकें गणित से लेकर पर्यावरण तक तमाम विषयों से संबंधित हैं।

डेविड के स्कूल नीलबाग में इस समय दो साल से इक्कीस साल की उम्र के 27 छात्र हैं। सामान्य रूप से प्रचलित क्लास रूम प्रणाली का यहां सहारा नहीं लिया जाता है क्योंकि सभी छात्र यहां एक साथ बैठते हैं। इम्तहान होते ही नहीं है। स्कूल में प्रत्येक बच्चा अपनी–अपनी क्षमता के अनुसार चीज़ों को जानता और सीखता है। सीखना यहां शिक्षक तथा छात्र दोनों के लिए एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है।

इसके क्या नतीजे रहे? जब डेविड दिल्ली में आए तब हम उनसे यह विशेष बातचीत आयोजित कर पाए। डेविड का इंटरव्यू लिया है बच्चों की मशहूर पत्रिका, टारगेट, की संपादिका रोज़लिंड विल्सन ने।

रोज़लिंड : डेविड, आप ब्रिटिश काउंसिल के अधिकारी रहे हैं, बाद में एक मान्य शिक्षक एवं लेखक के रूप में लंबे समय से भारत में रहे हैं। आपको नीलबाग स्कूल शुरू करने के लिए किस बात ने प्रेरित किया?

डेविड : मुझे लगता है कि यह मेरी भारत की पहली यात्रा ही थी। मैं पहली बार दूसरे महायुद्ध के दौरान, रॉयल ऍअर फोर्स के तहत भारत आया था। उन दिनों मेरी पोस्टिंग बांग्लादेश के चिटगांव में थी, जो उन दिनों भारत का ही एक हिस्सा था। उन दिनों मैं अपनी छुट्टी का कुछ समय, चिटगांव से बीस मील दक्षिण में एक छोटे से टापूनुमा गांव में बिताया करता जिसमें, धान के खेतों के बीच सिर्फ दो परिवार रहते थे, एक हिंदू और एक मुसलमान। सड़कें नहीं थीं, सिर्फ जलमार्ग ही थे। मैंने जब वो गांव का स्कूल देखा तो मुझे अहसास हुआ कि हां, यही वो काम है जो मैं जीवन में करना चाहता हूं, किसी गांव के स्कूल में पढ़ाना।

और फिर युद्ध के बाद मैं इंग्लैंड लौट गया। वहां मैंने डिग्री ली और 1950 में फिर भारत आ गया और सच तो यह है कि शुरुआत मैंने दूसरे छोर से की। मैंने मैसूर में, अंग्रेजी के प्रोफेसर के तौर पर पढ़ाना शुरू किया, फिर कुछ सालों तक ऋषि-वैली में जाकर पढ़ाया। 1959 में मैंने ब्रिटिश काउंसिल की नौकरी कर ली और 1972 में अपना स्कूल शुरू करने के लिए उससे अलग हो गया। इस सारे समय में मैं किसी न किसी रूप में शिक्षण से जुड़ा रहा और यह मेरी खुशकिस्मती रही कि मुझे पूर्व-प्राथमिक से लेकर बी.ए. तक, सभी स्तरों को पढ़ाने का अवसर मिला।

रोज़लिंड : आपके यह अनुभव क्या आपके स्कूल में प्रतिबिंबित हुए?

डेविड : हां, मेरा विचार मूल रूप से एक ग्रामीण स्कूल का था। लेकिन इस पर सभी तरह के प्रभाव देखे जा सकते हैं – इवान इलिच से लेकर ए.एस. नील तक के। मैं एक ऐसा स्कूल चाहता था जो मौज़ूदा स्कूलों से एकदम हट कर हो।

रोज़लिंड : क्या आपकी राय में मौज़ूदा स्कूल ठीक तरह से नहीं चल पा रहे हैं?

डेविड : हां, एक हद तक मैं यह कह सकता हूं कि वे ठीक ढंग से काम नहीं कर रहे हैं।

रोज़लिंड : तो जब आपने नीलबाग शुरू किया, आपको क्या लगता था इसकी कौन सी बातें बच्चों को आकर्षित करेंगी?

डेविड : सबसे पहले आपको वह बात ध्यान में रखनी होगी जो नील ने कही थी कि सभी स्कूल, जेल होते हैं और बच्चे, उनमें जाने को मज़बूर होते हैं। तो मैं एक ऐसा स्कूल चाहता था जहां बच्चों को, जाएं-या-न जाएं जैसे सवालों को, सोचने की ज़रूरत ही न पड़े। जहां वे जाने, न जाने, आने, न आने का फैसला अपने मन से कर सकें। इसके लिए विवश न किए जाएं। मैं एक ऐसा स्कूल भी चाहता था जिसमें सज़ा नाम की कोई चीज़ न हो।

रोज़लिंड : यह तो ए.एस. नील जैसी ही बात लगती है?

डेविड : हां। हालांकि बहुत सारे मुद्दों पर मेरी ए. एस. नील से ज़बरदस्त असहमति भी है। ज़ाहिर है, जहां आप कोई सज़ा नहीं चाहते हैं, वहां पर आप काई नियम भी नहीं रख पाएंगे क्योंकि जैसे ही आप कोई नियम लागू करना चाहेंगे, उनपर अमल कराने के लिए आपको अंत में किसी न किसी किस्म का दबाव भी डालना होगा और आखिरकार आप कहेंगे कि यदि आप हमारी जीवनशैली में स्वयं को नहीं ढाल सकते तो मुझे अफ़सोस है, आप हमारे साथ नहीं रह सकते।

इसके बाद मैंने पाया कि सभी स्कूलों का पाठ्यक्रम बहुत दोषपूर्ण है। बच्चे जब अपनी रचनात्मक ऊर्जा के चरम पर होते हैं, बारह-तेरह साल की उस उम्र में, परीक्षा के दबाव में उन्हें रचनात्मकता के तमाम रास्तों को बंद करना पड़ता है – क्योंकि परीक्षा को बहुत ही अनिवार्य माना जाता है। और तब मैंने तय किया कि मैं परीक्षा का कोई दबाव नहीं बनाऊंगा। आज स्कूल को चलते दस साल हो गए हैं, हमने कभी कोई परीक्षा नहीं ली है।

मेरा ऐसा मानना है कि बच्चों के स्कूल छोड़ने या फेल होने का, एक प्रमुख कारण, कक्षाओं का विभाजन है। इसलिए हमने पहली, दूसरी, अलग-अलग स्तर के क्लास बनाए ही नहीं। इसका फ़ायदा यह है कि बच्चों को अपनी क्षमता के अनुसार पढ़ने और विकसित होने का मौका मिलता है। बच्चे अपनी खुद की गति से आगे बढ़ते हैं।

रोज़लिंड : तब तो आपको बच्चों के अनुपात में शिक्षकों की संख्या बहुत अधिक रखनी पड़ती होगी?

डेविड : मुझे ऐसा नहीं लगता है। मैं पच्चीस छात्रों को अकेला अंग्रजी पढ़ा सकता हूं। लेकिन निश्चिय ही अधिकांश गांव के स्कूलों की तुलना में, हमारे यहां छात्र-शिक्षक का अनुपात बहुत कम है।

रोज़लिंड : फिर ऐसी हालत में आपके यहां पढ़ाई का स्तर भी बेहतर होना चाहिए?

डेविड : शिक्षा के बारे में मेरी अवधारणा बहुत अलग किस्म की है। एक शिक्षक का काम पढ़ाना नहीं बल्कि ऐसा वातावरण तैयार करना है जिसमें प्रत्येक बच्चा अपने स्तर पर चीज़ों को सीख सके। जैसे लोग मुझ से कहते हैं, ''देखो दोस्त, अगर तुम राजनीति के बारे में कुछ भी नहीं जानते हो तो तुम विश्वविद्यालय में राजनीति कैसे पढ़ा सकते हो?'' लेकिन मेरा काम किसी को कुछ सिखाना या पढ़ाना नहीं है। आमतौर पर, हम एक शिक्षक की कल्पना एक ऐसे व्यक्ति के रूप में करते हैं जो बहुत कुछ जानता है और उसे दूसरों तक ज्ञान पहुंचाने का काम करना है। जैसे कि आप जानते हैं कि राजनीति विज्ञान में डिग्री प्राप्त एक व्यक्ति, राजनीति विज्ञान पढ़ाता है, या साहित्य में एम.ए. करने वाला व्यक्ति साहित्य पढ़ाता है और इतिहास का डिग्रीधारी शिक्षक, इतिहास पढ़ाता है। पर मूल बात है बच्चों को सीखने की प्रक्रिया में शरीक करना, उन्हें पढ़ाना नहीं।

रोज़लिंड : एक बार फिर आपके स्कूल की स्थापना की ओर लौटते हैं। आपने तय किया कि स्कूल में कोई नियम नहीं होगा, किसी को सजा नहीं दी जाएगी और बच्चे अपनी इच्छा से आने या जाने को स्वतंत्र होंगे। ऐसे में बच्चे स्कूल आएं इसके लिए कोई बहुत प्रबल प्रेरणा या कारण होना चाहिए? आपके स्कूल में क्या सिखाया जाएगा और उसके लिए क्या तरीके या उपकरण काम में लाए जाएंगे, इसके बारे में आपको बहुत सोच-विचार की ज़रूरत पड़ी होगी?

डेविड : हां, इसके लिए बहुत प्रबल प्रेरणा की ज़रूरत थी। मैंने इसके बारे में बहुत सोचा कि वह क्या है जो बच्चों को सीखने के लिए प्रेरित करता है। मूल बात है, बच्चों में सीखने की ललक पैदा होना, उसके बाद वे खुद ही सीखने-पढ़ने लगेंगे। हमारे स्कूल में प्रतिस्पर्धा का कोई स्थान नहीं, हम अंक, ग्रेड या प्रमोशन नहीं देते, हमारे यहां सजा का प्रावधान नहीं है, बिल्ले और ईनाम नहीं दिए जाते। इस सबसे स्पष्ट हो जाता है कि हमारे यहां बच्चों को प्रोत्साहित करने के भी एकदम नए तरीके अपनाए जाते हैं। मुझे लगता है कि जब बच्चे अपनी कोशिश में सफल होते हैं तो वही उनके लिए सबसे बड़ा प्रोत्साहन होता है और मेरी प्रणाली में, जिसमें कोई स्तर, कक्षा या ग्रेड की व्यवस्था नहीं है, प्रत्येक बच्चा अपनी गति से सफलता प्राप्त कर सकता है। और चूंकि वह सफल होता है, यही बात उसे आगे लगातार सीखते-जानते रहने को प्रेरित करती है।

अब अगर आपके सामने पैंतीस बच्चों का समूह है और एक शिक्षक को उन्हें पढ़ाना है तो उसे एक निश्चित गति बनाए रखनी होगी, जो कक्षा के साठ से सत्तर प्रतिशत बच्चों के हिसाब से ठीक हो। यह रफ्तार कुछ बच्चों के लिए बहुत तेज हो सकती है तो कुछ होशियार बच्चों को बहुत धीमी भी लग सकती है। ऐसे में दोनों छोर पर जो बच्चे हैं, उनका मन उचटने लगता है। इस

प्रकार धीमी गति से चलने वाले बच्चे कुछ भी सीख नहीं पाते हैं। वहीं पर तेज बच्चे, हताश होने लगते हैं क्योंकि शिक्षक, उन्हीं बातों को दोहरा रहा होता है जिन्हें वे पहले से ही जानते हैं। हमारी प्रणाली में, एक कुशाग्र बच्चा, चाहे तो, चार साल की सामग्री को एक साल में ही पढ़ सकता है। हमारे यहां ऐसा ही एक बच्चा है, जिसने अंग्रेजी की चार साल के लिए निर्धारित पुस्तकों को एक ही साल में पढ़ लिया। वहीं कोई दूसरा बच्चा विभिन्न कारणों से किसी चीज़ को सीखने में कठिनाई अनुभव करता है तो वो एक की बजाए डेढ़ या दो साल में या जितना समय वो चाहे उतना समय लगाकर उसे सीख सकता है। लेकिन धीमी रफ्तार पर सीखने के बावज़ूद सफलता उसे भी मिलती है। इसका यह मतलब नहीं कि कुछ बच्चे ज़्यादा होशियार या तेज़ नहीं हो सकते। बेशक, होते हैं।

रोज़लिंड : लेकिन, आपको प्रोत्साहन का ऐसा कोई आधार दिखाई नहीं देता कि लोगों को व्यवहारिक शिक्षा का महत्व समझ में आए कि यह चीज़ उनके तुरंत फ़ायदे की है – और वे उसके प्रति उत्सुक हों?

डेविड : बिल्कुल नहीं। बच्चों के साथ तो ऐसा बिल्कुल नहीं किया जाना चाहिए। क्योंकि शिक्षा के बारे में एक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि, जब तक आप शिक्षित नहीं हो जाते, आप उसके महत्व को भी नहीं जान पाते। किसी ग्रामीण को यह बताने का कोई मतलब नहीं कि शिक्षा बहुत ज़रूरी है। वह इसका महत्व सिर्फ इस तरह से समझेगा कि ''अगर मैं दसवीं तक पढ़-लिख लूं तो मैं किसी सरकारी दफ्तर में चपरासी बन सकता हूं।'' लेकिन यह तो एक तकनीकी बात हुई, शिक्षा का मतलब सिर्फ इतना ही तो नहीं। कोई भी अशिक्षित व्यक्ति शिक्षा के वास्तविक महत्व को जान नहीं सकता है।

रोज़लिंड : यानि आप इसे ऐसे काम के रूप में देखते हैं जिसे करने में लुत्फ़ आए?

डेविड : बिल्कुल! पहला चरण ही यह है कि बच्चों को आनंद आए और वाकई में इसमें बच्चों को मज़ा आता है। वे बहुत जिज्ञासु होते हैं, उन्हें खेल बहुत पसंद आते हैं और वे खेलने के साथ-साथ अन्य कामों में भी भरपूर आनंद लेते हैं। जब वे अपनी क्षमताओं को पहचान लेते हैं तो फिर वो नए-नए कौशल हासिल करने की कोशिश में लग जाते हैं।

रोज़लिंड : लेकिन मुझे लगता है कि आपको बच्चों से शारीरिक श्रम करवाने के लिए कुछ तो प्रयास करने ही पड़े होंगे? आपका एक तयशुदा टाईम-टेबिल है? आपने कहीं ऐसा भी तो लिखा है कि बच्चों ने अपनी कक्षाओं का निर्माण खुद ही किया?

डेविड : हां, यह ठीक है कि हमारे यहां टाईम-टेबिल है, जो ज़्यादा लचीला भी नहीं है, लेकिन बच्चे कक्षा में आने, या न आने, के लिए स्वतंत्र हैं। हमारे यहां शारीरिक श्रम वैसा नहीं कराया जाता जैसे गांधीजी की कल्पना थी शारीरिक श्रम की। बेशक बच्चों ने अपनी कक्षाओं का निर्माण किया है, परंतु यह भी उनकी शिक्षा का एक सामान्य हिस्सा था।

हमारा पाठ्यक्रम बहुत व्यापक है। बच्चों की मातृभाषा तेलगू है, इसके साथ दूसरी भाषा के तौर पर वे अंग्रेज़ी सीखते हैं। वे एक प्रादेशिक भाषा कन्नड भी सीखते हैं। हिंदी और संस्कृत भी सीखते हैं। इसके साथ-साथ उनके पाठ्यक्रम में गणित, विज्ञान, पर्यावरण शिक्षा, कला, हस्तशिल्प, मिट्टी का काम और लकड़ी का काम भी शामिल है।

रोज़लिंड : पाठ्यक्रम क्या हो, यह आपने कैसे तय किया?

डेविड : अपने विवेक के अनुसार। सभी पाठ्यक्रम, बनाने वालों के, विवेक की उपज होते हैं। इसे पाठ्यक्रम बनाने वालों का मनमानापन भी कहा

जा सकता है। उदाहरण के लिए, हमारे स्कूल में दर्शन पढ़ाया जाता है, क्योंकि मेरे विचार में बच्चों के लिए दर्शन बेहद उपयोगी हो सकता है। लेकिन संभव है कि आप ऐसा न मानते हों और अन्य स्कूलों के पाठ्यक्रम में दर्शन को शामिल ही न किया गया हो क्योंकि कुछ लोगों को वो ज़रूरी नहीं लगता हो। हम सौंदर्यशास्त्र भी पढ़ाते हैं, संगीत का रस लेना तथा तर्क-वितर्क की तकनीकें भी सिखाते हैं। अब ये सारी चीज़े मुझे बच्चों के लिए बेहद ज़रूरी जान पड़ती हैं। लेकिन आपको यह सब आम पाठ्यक्रमों में नहीं मिलेगा।

इसी तरह हम मिट्टी के बर्तन बनाना सिखाते हैं। कभी-कभी लोग हमारा पॉटरी (मिट्टी) विभाग देख कर कहते हैं ''बहुत अच्छा, आप बच्चों को कुम्हार का काम भी सिखा रहे हैं ताकि वे बाद में इससे अपनी रोज़ी-रोटी चला सकें।'' मेरी इस तरह की कुछ भी मंशा नहीं है। मुझे लगता है कि काम के ज़रिए सीखना बहुत ज़रूरी है। आपने मूर्तिकार ऐरिक गिल के बारे में सुना होगा। उन्होंने शिक्षा पर काफी लिखा है। एक बात जो उन्होंने कही वह यह कि हम बच्चों को, चीज़ों के इस्तेमाल में, कभी भी शिक्षित नहीं करते, हमेशा विचार, अभ्यास और खेल आदि-आदि, पर चीज़ों का इस्तेमाल कभी नहीं। मेरे विचार से बच्चों को यह सीखना चाहिए कि पदार्थ कैसे अपना अनुशासन इस्तेमाल करने वाले पर लगाता है। यह उस वस्तु का अपना अनुशासन होता है जो, किसी बड़े के द्वारा बताए जाने वाले अनुशासन से बिल्कुल भिन्न होता है। अगर मैं अंग्रेज़ी में कोई गलती करता हूं तो आप मुझे टोक सकती हैं और मेरी गलती को दुरुस्त कर सकती हैं। लेकिन अगर मैं कुम्हार के चॉक पर काम करते हुए गलती करूंगा तो मिट्टी खुद ही मुझे बता देगी कि देखो, तुम मुझे ठीक से काम में नहीं ले रहे हो। अगर मैं लकड़ी पर गलत तरीके से रंदा चलाने लगूंगा तो वो चिकनी होने की बजाए और खुरदरी हो जाएगी। इस तरह लकड़ी स्वयं बालक को अपने अनुशासन में ढाल लेगी। यह बहुत अद्‌भुत चीज़ है और इसके लिए बाहर से थोपे किसी अनुशासन की ज़रूरत ही नहीं है क्योंकि प्रत्येक वस्तु की अपनी प्रकृति होती है, अपना अनुशासन होता है।

रोज़लिंड : आपके विद्यार्थी जब इस स्कूल से निकलते हैं तो क्या उनमें मुख्यधारा में शामिल होने की महत्वाकांक्षा रहती है?

डेविड : हालांकि अभी तक पूरी तरह हमारे स्कूल से तैयार होकर कोई बच्चा नहीं निकला है। हमारे पास एक लड़का आया था जिसने हाल ही में बी.ए. किया है। वह गांव के उन लोगों में से था जो पढ़ाई छोड़ देते हैं, क्योंकि वे, पी.यू.सी. की परीक्षा में पास नहीं हो पाया था। तब हमने उससे कहा कि ठीक है। हम इस परीक्षा को पास करवाने में तुम्हारी मदद करेंगे।

हमारे यहां एक लड़का है जो प्रशासनिक सेवा में जाना चाहता है। हम हर सप्ताह एक बातचीत का दौर रखते हैं, इसमें बच्चों से उनके भविष्य की योजनाओं के बारे में पूछते हैं। उनमें से अधिकांश ने अभी कुछ तय नहीं किया होता है। मुझे अक्सर इस बारे में आक्रामक सवालों का सामना करना पड़ता है कि हम बच्चों को, बहुत ऊंचे बौद्धिक स्तर की शिक्षा दे रहे हैं और उनकी अंग्रेजी बहुत अच्छी है - मेरे यहां बारह-तेरह साल के बच्चे शेक्सपीयर का सातवां नाटक पढ़ रहे हैं। यह बहुत ऊंचा स्तर है, द्विभाषीय स्कूल के लिहाज़ से, यह कोई अंग्रेजी माध्यम स्कूल तो है नहीं। बच्चे शेक्सपीयर के दीवाने हैं, उन्हें यह संसार की बहुत महान कृति लगती है, इन दिनों हम ओथेलो पढ़ रहे हैं।

लोग मेरी आलोचना करते हैं, और कहते हैं कि तुम बच्चों को, गांव से दूर कर रहे हो (और इस तरह की टिप्पणी करने वाले हमेशा शहरी लोग ही होते हैं)। खैर, मैं कहता हूं कि मैं लोगों के साथ छलकपट के लिए तो यहां आया नहीं हूं। मेरे यहां होने का एक मात्र उद्देश्य, उनकी सामर्थ्य के अनुसार उन्हें बेहतरीन शिक्षा दे पाना है जिससे उनकी तमाम ऊर्जा तथा संभावनाओं को विकसित होने का मौका मिले - वे सोच सकें, महसूस कर सकें, स्नेहपूर्ण संबंध बना सकें, चीज़ों को समझ सकें, कह सकें, खुद को अभिव्यक्त कर सकें, चीज़ों को उपयोग करना सीख सकें, पर्यावरण को समझ सकें,

शोषण के मायने समझ सकें तथा और भी बहुत सारी चीज़ें हैं जिने वे जान-समझ सकें। इसके बाद वे क्या करते हैं उसमें मेरा कोई दखल नहीं। मैं उनसे नहीं कहूंगा कि उन्हें गांव में रहकर दूसरों की मदद करनी चाहिए। अगर वे खुद ऐसा करना चाहते हैं तो वे शौक से करें। अगर वे किसी बड़े शहर में जाकर चित्रकार बनना चाहते हैं, तो वो भी ठीक है। मैं उन्हें यह बताने के लिए नहीं हूं कि वे क्या करें।

रोज़लिंड : क्या ग्रामीण बच्चों के लिए एक अच्छा पाठ्यक्रम तैयार करने के पीछे आपका उद्देश्य यह है कि उन्हें अच्छा रोज़गार मिल सके?

डेविड : मेरे लिए ग्रामीण पाठ्यक्रम का कोई मतलब नहीं, यह सब बकवास है जिसे उन पांच प्रतिशत, शहरी, पढ़े-लिखे, सम्भ्रांत लोगों ने फैलाया है जो देश की सत्ता पर काबिज़ हैं, जिनका शिक्षा प्रणाली पर नियंत्रण है और मैं यहां तक भी कहूंगा कि ये लोग ही ग्रामीण आबादी को शिक्षा से वंचित रखना चाहते हैं। तीन महीने पहले दिल्ली से एक अध्ययन प्रकाशित किया गया था जिसके अनुसार, देश भर में 65 प्रतिशत बच्चे, पांचवी कक्षा के बाद, पढ़ाई छोड़ देते हैं।

मुझे लगता है कि यह संख्या लगातार बढ़ती ही जाएगी। आप देखेंगे कि शिक्षा का पाठ्यक्रम, इन पांच प्रतिशत, शहरी सम्भ्रांत वर्ग को ध्यान मे रखकर ही तैयार किया जाता है और सारे संसाधन भी इसी वर्ग को समर्पित होते हैं। हमारे ग्रामीण विद्यालयों में दो सौ बच्चों पर एक शिक्षक नियुक्त होता है। कितना हास्यास्पद है कि हमारे स्थानीय हाई स्कूल में, सेकंडरी की परीक्षा का नतीजा, मात्र चार प्रतिशत ही रहता है। आप कल्पना भी नहीं कर सकते! जो बच्चे दस साल तक प्रतिदिन तीन मील चलकर स्कूल आते रहे हैं, वो अंत में फेल हो जाते हैं!

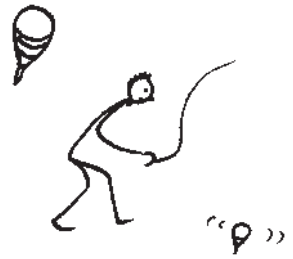

रोज़लिंड : लेकिन आप हर गांव में तो एक डेविड ऑसबरॉ के होने की कल्पना तो कर नहीं सकते? या कर सकते हैं? यहां तक कि जिस तरह की व्यवस्था आपने कायम की है उसको ज़ारी रखने के लिए भी आपको असाधारण रूप से योग्य लोगों की ज़रूरत पड़ती होगी?

डेविड : इस स्कूल के साथ-साथ हम बच्चों के लिए चार और स्कूल संचालित कर रहे हैं - वहीं मैं एक छोटा शिक्षक प्रशिक्षण स्कूल भी चला रहा हूं। और जब कभी भी मुझे ऐसे प्रतिबद्ध युवा लोग मिलते हैं जो, इस तरह का स्कूल शुरू करने में उत्सुकता रखते हों तो मैं उनके बी.ए. या एम.ए. कर लेने पर, (कम से कम बी.ए. की अपेक्षा तो मैं भी रखता हूं), उन्हें दो साल का प्रशिक्षण देता हूं जिसका उद्देश्य यह होता है कि वे कम-से-कम, दसवीं तक के, सभी विषय पढ़ाने की स्थिति में पहुंच जांए। फिर वे अपना स्कूल शुरू करते हैं। फिलहाल हमारे ऐसे चार स्कूल चल रहे हैं, सभी ग्रामीण क्षेत्रों में हैं और प्रत्येक में पंद्रह से बीस तक बच्चे पढ़ रहे हैं। ऐसे प्रशिक्षित लोगों द्वारा चलाए जाने वाले स्कूल भी अच्छा काम कर रहे हैं। इसलिए मुझे लगता है कि यह सब सीखा और सिखाया जा सकता है।

रोज़लिंड : बेशक! मोबाइॅल-क्रेश द्वारा आयोजित प्रशिक्षण कार्यक्रमों को देखने का मुझे कुछ अनुभव है। वहां कम पढ़-लिखे लोगों का चयन कर लिया जाता है और फिर उन्हें सघन प्रशिक्षण दिया जाता है। इस सब काम में और निगरानी रखने में उन्हें काफी मेहनत करनी पड़ती है।

डेविड : यह इसलिए हो रहा है क्योंकि वहां ऐसे लोगों को लिया जा रहा है जिन्हें अशिक्षित कहा जा सकता है क्योंकि उन्हें अपने कार्यक्षेत्र के आधारभूत दर्शन की भी जानकारी नहीं है। इसलिए ही उनपर लगातार नज़र रखने की ज़रूरत भी पड़ती है। वे सिर्फ तकनीक को सीख लेते हैं और फिर चाहें वो उपयुक्त हो या नहीं, वे इसमें फर्क करने की कोशिश भी नहीं करते और उसे काम में लेते चले जाते हैं। वे उसके मूल विचार तक तो पहुंच ही

नहीं पाते, बस उसकी तकनीक में ही उलझे रहते हैं। यह इसलिए होता है क्योंकि उन्हें सिर्फ तकनीक मिली है, दर्शन नहीं।

रोज़लिंड : तो फिर यह मानिए, आपको इस तरह का प्रशिक्षण देने के लिए एक विशेष किस्म की प्रतिभा से सम्पन्न लोगों की ज़रूरत रहती है?

डेविड : बिल्कुल ठीक। इसलिए न्यूनतम शिक्षा ज़रूरी है - कम-से-कम बी. ए. (ऐसा नहीं है कि बी.ए. करने वालों को शिक्षित कहा जा सकता है) तब हम उन्हें एक ऐसा वातावरण उपलब्ध कराते हैं जिसमें वे यह जान सकें कि कैसे पढ़ाया जाए? हमारा लक्ष्य उन्हें यह सिखाना है कि कैसे सिखाया जाए? इसके लिए उनके सामने एक स्कूल होना चाहिए जहां वे स्वयं भी पढ़ा सकें।

बिना स्कूल के, टीचर-ट्रेनिंग का विचार ही, एक कोरा मज़ाक है। यह कुछ उस तरह की बात होगी जैसे एक बच्चे को बिना कुम्हार के चॉक के, मिट्टी के बर्तन बनाना सिखाने की कोशिश की जाए। लेकिन हमारे देश के सभी टीचर-ट्रेनिंग कालेज, बिना स्कूल के ही चलते हैं। ऐसे प्रशिक्षण संस्थानों की सफलता पर हमेशा शंका का साया मंडराता है। अगर आप टीचरों को ट्रेनिंग दे रहे हैं तो उसके लिए आपको बच्चों की तो ज़रूरत होगी ही। मेरे स्कूल में टीचर-ट्रेनी लगभग 800 घंटे पढ़ाने का अनुभव प्राप्त करते हैं। जब ऐसा होता है तब आपको वास्तव में कुछ अच्छे परिणाम मिलते हैं। वे कम से कम कक्षा को नियंत्रण में रखना सीख जाते हैं और बच्चों में रुचि पैदा कर सकते हैं। इसके अलावा वे कार्यशाला में जाते हैं। पढ़ने के लिए उनके पास एक बेहतर पुस्तकालय है। यहां कार्यशाला भी बहुत महत्वपूर्ण है, क्योंकि अधिकांश भारतीय युवाओं को हस्तकौशल के कार्यों का अभ्यास नहीं होता है, वे बढ़ईगीरी के बारे में न्यूनतम जानकारी भी नहीं रखते कि लकड़ी को कैसे काटा या जोड़ा जाता है, इसी तरह अन्य कामों के बारे में भी। अधिकांश लड़कियों को तो, हाथ के औज़ार उठाने का अनुभव भी नहीं

होता। वे चित्र खूब बना लेती हैं और खूब पढ़ती हैं। प्रत्येक सप्ताह मैं उन्हें ऐसे चार काम सौंपता हूं जिनकी उन्होंने पर्याप्त सैद्धांतिक जानकारी हासिल की होती है। सप्ताह में दो सेमीनार होते हैं जिनमें हम शिक्षा के दर्शन पर चर्चा करते हैं, या पढ़ने के दौरान उन्हें जो दिक्कतें आती हैं, उनके बारे में चर्चा करते हैं। सामान्य मनोविज्ञान, शिक्षा का मनोविज्ञान तथा शिक्षा का दर्शन भी उनके पाठ्यक्रम का हिस्सा हैं।

रोज़लिंड : मुझे लगता है कि आप मसले को एक शिक्षा योजना बनाने वाले की दृष्टि से नहीं देख रहे हैं, क्योंकि वे समाज को किसकी ज़रूरत हैं, इसके विश्लेषण से शुरू करते हैं और फिर शिक्षा तंत्र को उन ज़रूरतों के मुताबिक ढालने की कोशिश करते हैं। जैसे अगर देश को ज़्यादा क्लर्क चाहिए तो वे ज़्यादा क्लर्क पैदा करेंगे, अगर इंजीनियर चाहिए तो इंजीनियर - और इस तरह सिलसिला चलता रहता है।

डेविड : सही है। हम पाते हैं कि हमारे यहां शिक्षा में, योजना बनाने वालों की कोई कमी नहीं है। दुख इस बात का है कि भारत में कितने ही सालों से शिक्षित क्लर्क बन रहे हैं और आज भी शिक्षा के निर्माता इसी तरह के लोगों को संचालित कर रहे हैं। अगर आपको ज़्यादा वैज्ञानिक चाहिए, आप ज़्यादा पैसा दीजिए और देखिए कि कितने ही लोग वैज्ञानिक बनने को इच्छुक होंगे।

रोज़लिंड : क्या लोक शिक्षा का सवाल ही लोगों को धोखा देना जैसा नहीं है?

डेविड : आज के समय हम 95 प्रतिशत आबादी के साथ यही छल कर रहे हैं। इसका अहम कारण तो यही है कि हमारा पाठ्यक्रम, पांच प्रतिशत, संभ्रान्त वर्ग को ध्यान में रखकर तैयार किया जाता है, उनके बच्चों को ज़्यादा फ़ायदा पहुंचाने के लिए। इसकी सारी योजना ही उन लोगों को ध्यान में रखकर बनाई गई है जो विश्वविद्यालय तक जाते हैं। आप किसी साधारण

स्कूल का विज्ञान का पाठ्यक्रम उठाकर देखिए, यह उन अपेक्षाओं को ध्यान में रखकर तैयार किया जाता है जो विश्वविद्यालय जाने वाले छात्रों से की जाती हैं। किसी औसत ग्रामीण शिक्षक के लिए उसे पढ़ पाना बहुत मुश्किल होता है, और यही स्थिति ग्रामीण बच्चों की भी है। इसलिए वो पढ़ाई को बीच में ही छोड़ देते हैं, जो कि बहुत सुविधाजनक भी है, क्योंकि हम नहीं चाहते कि इसी व्यवस्था में, वे लगातार, हमारे साथ-साथ चलते रहें।

रोज़लिंड : लोक शिक्षा की आप ऐसी परिकल्पना कैसे कर सकते हैं कि पढ़ाई बीच में छोड़ने वाले ऐसा न कर पाएं। आप अपने ही स्कूल को लें। इसे विशेष प्रतिभा सम्पन्न लोग संचालित करते हैं। ऐसा तो नहीं लगता कि जिस बड़े पैमाने पर इसकी ज़रूरत है, उस पर यह प्रणाली व्यवहारिक साबित हो पाएगी।

डेविड : नहीं, हमारा स्कूल व्यवहारिक है। मैंने हाल ही में अपने एक मित्र की पत्रिका के लिए लेख लिखा है जिसमें इस बात को बहुत साफ-साफ रेखांकित किया गया है कि जब तक शिक्षा नीति बनाने वाले इन सारी समस्याओं पर ठीक ढंग से सोचने नहीं लगेंगे तब तक कुछ नहीं किया जा सकता है। वहां एक तरह का दोहरा सोच देखने में आता है। जो लोग ऊंचे ओहदों पर बैठते हैं वो सोचते हैं कि बहुत कुछ हो रहा है, परंतु वास्तव में वह हो ही नहीं रहा। वे सोचते हैं कि पाठ्यक्रम बहुत अच्छा है पर उसे ठीक से व्यवहार में लागू नहीं किया जा रहा है।

अगर आप हमारे स्थानीय कालेज में जाएंगी, जो कि 15 मील की दूरी पर है, आप देखेंगी कि कुछ लोगों ने वैकल्पिक विषय अंग्रेजी लिया है। उनके पाठ्यक्रम में कुछ पुस्तकें हैं, मान लीजिए - ***रिचर्ड थर्ड*** या फिर ***टेल ऑफ टू सिटीज़*** हैं। कोई विद्यार्थी इन पुस्तकों को नहीं पढ़ेगा। पढ़ना तो दूर वे उन्हें खरीद कर भी नहीं लाएंगे। वे उन पुस्तकों के बारे में कुछ निबंध याद

कर लेंगे और परीक्षा में वही लिख आएंगे। जो लोग पाठ्यक्रम बनाते हैं, परीक्षा लेते हैं और जो पढ़ाते हैं, वे सभी खुश हैं कि छात्र साहित्य पढ़ रहे हैं जबकि वास्तव में ऐसा कुछ हो ही नहीं पा रहा है (हंसते हैं)।

रोज़लिंड : आपकी राय में शिक्षा की योजना बनाने वालों को क्या करना चाहिए?

डेविड : जाहिर तौर पर बहुत सारी चीज़ें हैं जो की जानी चाहिए। मिसाल के तौर पर बहुत सारे लोग दसवीं की परीक्षा में फेल होते हैं। अब इस स्थिति से बचने का एक तरीका तो यह हो सकता है कि एक ऐसी नीति निर्धारित की जाए जिसके तहत विद्यार्थी विभिन्न स्तरों पर, स्वेच्छा से, कितने ही कम-ज़्यादा विषय लेने के लिए स्वतंत्र हो । आप चाहें तो प्रारंभिक गणित लें या फिर एडवांस्ड गणित। इन विषयों में ग्रेड दिए जा सकते हैं और एक बच्चा जब विद्यालय स्तर की शिक्षा पूरी करे, उसके बाद चाहें तो वह तीन विषय ले, या पांच अथवा दो। इसका मतलब यह हुआ कि यदि कोई छात्र विश्वविद्यालय स्तर पर भौतिकी, रसायन शास्त्र और गणित विषय पढ़ना चाहता है तो वो सेकंडरी स्तर पर एडवांस्ड गणित, भौतिकी और रसायन विषय ले सकता है। अगर किसी व्यक्ति की ऐसी कुछ महत्वाकांक्षा न हो, और वो शायद बहुत अधिक प्रतिभाशाली भी न हो, तो वो प्रारंभिक अंग्रेज़ी, प्रारंभिक तेलगू, प्रारंभिक गणित और प्रारंभिक पर्यावरण विज्ञान जैसे विषय चुन सकता है। ऐसे में उसे चार सी ग्रेड मिल सकते हैं।

अब यदि अगर सरकार को चपरासियों की ज़रूरत है तो उसकी वांछित योग्यता चार सी ग्रेड हो सकती है। किसी काम के लिए चार बी ग्रेड अथवा युनीवर्सिटी को किसी कार्य के लिए तीन या पांच या दस ए ग्रेड वालों की ज़रूरत हो सकती है। इसका अर्थ हुआ कि सब पास होंगे, लेकिन अलग-अलग स्तर पर। ऐसे में किसी को नियुक्ति देते समय आपको यह नहीं पूछना

होगा कि क्या तुमने दसवीं की परीक्षा पास की है? बल्कि आप पूछेंगे कि तुमने कौन सा ग्रेड पाया है? और प्रत्याशी बताएगा कि मैं लिख-पढ़ सकता हूं और मुझे तेलगू और गणित में बी ग्रेड मिले हैं। और आपका जवाब होगा बहुत अच्छा। अब तुम हमारे संस्थान में एक क्लर्क जैसे काम कर सकते हो। अभी सरकार चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी के लिए विज्ञापन निकालती है कि वह दसवीं कक्षा पास हों क्यों कि उन्हें ऐसा व्यक्ति चाहिए जो कि लिख-पढ़ सके। अब आपको पढ़ने की योग्यता वाले लोग मिल जाएंगे। लेकिन ईश्वर के लिए आप उनसे विज्ञान जानने की इच्छा न रखें।

मेरी पोती, हेस्टिंग्स तकनीकी कालेज में जाना चाहती है और इसके लिए वांछित योग्यता 4 सी ग्रेड है। अब आप देखिए चार सी ग्रेड का मतलब हुआ चार विषयों में सफलता, किन्हीं भी चार विषयों में। अब यदि वह विश्वविद्यालय में जाना चाहती तो उससे और ऊंचे ग्रेडों की मांग होती और वो भी विशेष विषयों में। लेकिन हमारे यहां प्रत्येक बच्चे को दसवीं के सभी विषयों में एक साथ उत्तीर्ण होना ज़रूरी है। और यह सभी विषय बहुत ऊंचे स्तर के हैं क्योंकि इनकी रूपरेखा पी.यू.सी. स्तर के लिए तैयार की गई है। पी.यू.सी. का अपना स्तर इसलिए ऊंचा है क्योंकि वह विश्वविद्यालय स्तर को ध्यान में रखकर चलता है। यही कारण है कि बहुत सारे बच्चे फेल हो जाते हैं।

रोज़लिंड : मुझे कुछ ऐसी जानकारी है कि आपने गांव में अपने स्कूल के अलावा एक प्रौढ़ शिक्षा केंद्र भी चलाया है?

डेविड : नहीं, इस तरह का तो कुछ नहीं है। एक समय हमने ऐसी कोशिश की थी कि कुछ बच्चों के मां-बाप भी शिक्षा हासिल करने के लिए आएं। लेकिन अनेक कारणों से यह संभव नहीं हो पाया। बहुत से माता-पिता ने आना छोड़ दिया क्योंकि उन्हें यह बेमेल लगता था। हमारे लिए भी यह विकट स्थिति थी कि कैसे एक ठीक समय चुनें, जब सारे लोग काम छोड़कर

यहां आएं। अंत में हमने इस इरादे को ही छोड़ दिया। लेकिन यह तो एक छोटी सी शुरुआत मात्र थी। प्रौढ़ शिक्षा केंद्र जैसी कोई बात इसमें नहीं रही।

प्रौढ़ शिक्षा के बारे में मुझे कोई ज़्यादा उम्मीद नहीं है। प्रौढ़ शिक्षा से जुड़े बहुत से लोागों से अक्सर मेरी मुलाकात होती है और मैं उनसे पूछा करता हूं कि वे क्या और क्यों कर रहे हैं और इस काम के पीछे का विचार क्या है? मुझे मुश्किल से कोई ठीक-ठाक जवाब मिल पाता है। वे कहते हैं कि हम गांव में जाकर प्रौढ़ लोगों को पढ़ाते हैं। क्यों? क्योंकि पढ़ना उनके लिए अच्छा है।

रोज़लिंड : शायद उन्हें लगता हो कि इससे उन्हें अपने हालात पर पकड़ बनाने में थोड़ी और सहायता मिल जाएगी। गैलब्रेथ का भी तो यही मानना था।

डेविड : मेरे विचार में सिर्फ पढ़ने की क्षमता अर्जित कर लेने का कोई महत्व नहीं है, महत्वपूर्ण है शिक्षित होना। प्रौढ़ शिक्षा का महत्व तभी है। शिक्षा की क्या दशा है, इस लिहाज़ से देखें तो यह विकट समस्या है - यानि कौन, किसे, कहां और कैसे पढ़ाने जाता है, यह आप अच्छी तरह जानती-समझती हैं। शिक्षा एक लंबे समय तक चलने वाला काम है, खासकर ग्रामीण प्रौढ़ों के लिए।

रोज़लिंड : दिल्ली में एक खुला विश्वविद्यालय शुरू किया गया है। यह बीच में पढ़ाई छोड़ गए लोगों के लिए बनाया गया है।

डेविड : मुझे इस बारे में जानकारी नहीं है। लेकिन मैं बड़ी उम्र के लोगों के बारे में सोच रहा हूं। यह एक बात है। दूसरी बात है जब उन्हें शिक्षित किया जाएगा तो उसमें साक्षरता भी निहित होगी। ऐसे में मुझसे पूछा जा सकता है कि उन्हें क्या पढ़ना चाहिए? जनसंचार के दो प्रमुख माध्यम हैं - अखबार और रेडियो। तब हम फिर उसी संभ्रान्तता के चक्कर में फंस जाते हैं,

क्योंकि एक औसत ग्रामीण व्यक्ति रेडियो पर समाचार सुनकर भी समझ नहीं सकता। पढ़ लेता, तो भी नहीं समझ पाता। वो अखबार को भी नहीं समझ सकता। अगर वे कन्नड, तेलगू या हिंदी में भी समाचार सुनें तो वे समझ नहीं पाएंगे। हमारे देश में जिनके पास रेडियो होंगे, वे सभी फिल्मी गाने सुनते हैं, वे समाचार सुनते ही नहीं क्योंकि वे उन्हें समझ ही नहीं सकते। यही स्थिति समाचार पत्रों की है। अगर मैं तेलगू का एक समाचार भी पढ़कर सुनाऊं तो मेरी बावर्चिन उसका एक शब्द भी नहीं समझ सकती।

रोज़लिंड : क्या आपको लगता है कि आपके बच्चे अपने आस-पास के माहौल के प्रति ज़्यादा जागरूक हैं – और वे इसमें परिवर्तन लाने के लिए अपनी भूमिका के बारे में सोच सकते हैं?

डेविड : बेशक। क्योंकि वे शोषणकारी व्यवस्था के बारे में ज़्यादा से ज़्यादा जान रहे हैं। इसे एक उदाहरण से समझा जा सकता है कि सरकार घर निर्माण करने के लिए कुछ कर्ज़ देती है। लेकिन ग्रामीण को उस कर्ज़ का 20 प्रतिशत तक हिस्सा उन लोगों को सौंप देना पड़ता है जो इन कागज़ातों पर दस्तखत करते हैं। एक हज़ार रुपए के कर्ज़ में 200 रुपए यूं ही निकल जाते हैं। हम जानते हैं कि ऐसी बातें कितनी आम हो गई हैं लेकिन बच्चे इनके बारे में जागरूक हो रहे हैं। पुरानी पीढ़ी के ग्रामीणों के सोचने-समझने पर, धर्म बहुत हावी रहता था, नई पीढ़ी इसके असर से मुक्त हो रही है।

रोज़लिंड : क्या इन मामलों में बच्चों और उनके माता-पिता के बीच परेशानियां भी पैदा हुई हैं?

डेविड : वे तो होनी ही हैं। जैसे ही आप एक बच्चे को शिक्षित करना शुरू करते हैं, वो गांव के माहौल से तथा अपने उन माता-पिता से भी दूर होने लगता है जिनके लिए गांव ही पूरी दुनिया है। वहीं एक बच्चे का संसार, अतीत में मोहनजोदड़ो तथा हड़प्पा, तो वर्तमान में अमरीका, ग्रीनलैंड और

तमाम दुनिया तक विस्तार पाने लगता है। उसकी दुनिया उसके माता-पिता की दुनिया से बहुत अलग हो जाती है। चूंकि बच्चे धर्म, लिंग, शोषण, राजनीति तथा तमाम चीज़ों पर (स्कूल में) बातचीत करने लगते हैं तो वे गांव में प्रचलित अनेक धारणाओं तथा धार्मिक मान्यताओं आदि पर संदेह करने लगते हैं। इसलिए बच्चों और उनके माता-पिता के बीच विवाद की स्थितियां उत्पन्न होने लगती हैं।

रोज़लिंड : क्या उनमें से किसी ने बच्चों को विद्यालय आने से रोका भी है?

डेविड : नहीं, अब तक तो किसी ने नहीं। और जितने ज़्यादा समय वे अपने बच्चों को मेरे साथ रहने देंगे, उनके लिए बच्चों को कुछ भी करने से रोकना उतना ही अधिक मुश्किल होता चला जाएगा। लड़कियां विवाह को टालने में सफलता पा रही हैं। यहां कुछ अट्ठारह-उन्नीस साल की लड़कियां हैं जिनकी तीन साल पहले ही शादी हो गई थी, लेकिन उन्होंने स्नातक होना तय कर रखा है। उन्होंने अपने लिए इतनी सफलता तो हासिल कर ही ली है क्योंकि बहुत तेज़ी से परिवर्तन आ रहे हैं। किस तरह की बदल आ रही है, आप इस बात को एक उदाहरण से समझ सकती हैं। जब मैंने स्कूल शुरू किया था तब मां-बाप हर दिन अपने बच्चों को पीटा करते थे, अब केवल एक ऐसा पिता है जो बच्चों को पीटता है लेकिन वह भी सिर्फ तब, जब वह बहुत नशे में होता है। यह परिवर्तन का एक ही प्रमाण है। इस बारे में राय अलग-अलग हो सकती है कि यह ठीक है अथवा नहीं लेकिन परिवर्तन तो हो ही रहे हैं। किसी औसत पंद्रह साल के लड़के की तुलना में परिवार में इन बच्चों की बात पर ज़्यादा ध्यान दिया जाता है। माता-पिता उनसे समझदारी पूर्ण सलाह की अपेक्षा करने लगे हैं और लड़के कोशिश करते हैं कि उनके माता-पिता बचत कर सकें, शराब कम पिएं, वे ज़मीन की और गांव की समस्याओं पर ध्यान दें, आदि।

रोज़लिंड : शिक्षा के बारे में एक बात यह भी कही जा रही है कि जब तक इसके साथ भौतिक खुशहाली की उम्मीद न जुड़ी हो, तब तक लोग स्कूल जाना ही नहीं चाहते। क्या आपको अपने बच्चों के संदर्भ में यह ठीक लगता है?

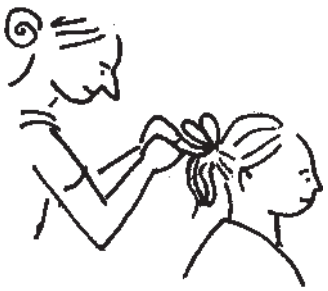

डेविड : यह मैं मानता हूं कि कुछ मौके ऐसे आए जब मुझे भी कुछ माता-पिता को, जबकि वे अपने बच्चों को बकरियां चराने भेजना चाहते थे, इस तरह के लालच देने पड़े कि, यदि आपका बच्चा स्कूल जाएगा तो उसे अच्छी नौकरी मिल पाएगी और तब आपको इतनी मेहनत करने की ज़रूरत नहीं रहेगी। इस तरह के कुछ छोटे प्रलोभन तो मुझे भी देने पड़े, मैं मानता हूं। मुझे लगता है कि चूंकि वे स्वयं अशिक्षित हैं, उन्हें लगता है शिक्षा मात्र एक बेहतर जीवन स्तर प्राप्त करने का माध्यम भर हो सकती है।

रोज़लिंड : लेकिन क्या उन्हें एक बेहतर जीवन की संभावना दिखने लगी है? क्या बच्चे इस तरह से सोचने भी लगे हैं?

डेविड : बच्चों को संभावना दिखती है। मेरा ख्याल है, आपका सवाल माता-पिता के बारे में था। यह बात तो उनकी तमाम गतिविधियों में झलकने लगी है। कला की किसी भी विधा को ले लें, उसके बारे में उनके माता-पिता ने कभी सुना ही न होगा, या शेक्सपीयर, या लकड़ी अथवा मिट्टी के साथ उनका काम करना, नाटक अथवा विभिन्न विचारों पर चर्चा करना, नए-नए बौद्धिक अनुभव प्राप्त करना। मुझे लगता है कि यह सब उन्हें पर्याप्त रोमांचक लगता है।

रोज़लिंड : आप शुरुआत से ही भाषाओं को जानने और पढ़ने पर ज़ोर देते रहे हैं।

डेविड : हां, मेरी राय में संवाद शिक्षा का बहुत महत्वपूर्ण अंग है। एक

बच्चे को आप जब पढ़ना सिखा देते हैं, चीज़ों को कैसे जानना चाहिए यह सिखा देते हैं तो आपका काम पूरा हो जाता है। अब तीसरा काम बचता है - उसे अधिक से अधिक जानने के लिए उत्साहित करना। असल चीज़ यही है, कोई भी व्यस्क यदि पढ़ना जानता है, तथा और अधिक पढ़ने-सीखने की ललक उसमें है तो वह जो चाहे सीख सकता है।

रोज़लिंड : क्या इसीलिए आप उन्हें अंग्रेज़ी सिखाते हैं?

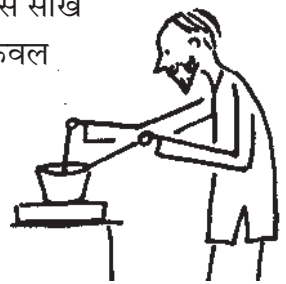

डेविड : हां, कुछ हद तक। ज़्यादातर मातृभाषा माध्यम वाले स्कूल अंग्रेज़ी पढ़ाते हैं लेकिन बच्चे कुछ खास सीख नहीं पाते हैं क्योंकि शायद सप्ताह में अंग्रेज़ी की केवल एक ही कक्षा होती है। अंग्रेज़ी में भूगोल, इतिहास, जीव विज्ञान, इलैक्ट्रानिक्स या किसी भी विषय की सैकड़ों पुस्तकें मिल जाएंगी। लेकिन तेलगू व कन्नड में वे पुस्तकें उपलब्ध नहीं हो सकतीं। इसलिए जो बच्चा आसानी से अंग्रेज़ी पढ़ नहीं सकता वह, कम-से-कम मेरे विचार से तो, बहुत व्यापक शिक्षा प्राप्त नहीं कर सकता है। इसलिए मुझे लगा कि उन्हें अंग्रेज़ी जाननी ही चाहिए।

दूसरी तरफ अंग्रेज़ी माध्यम स्कूलों में किसी भारतीय भाषा में बच्चों की सामर्थ्य विकसित नहीं की जाती, इसलिए ये बच्चे भारतीय संस्कृति की मुख्यधारा से कट जाते हैं। लेकिन वे पाश्चात्य संस्कृति को भी अपना नहीं पाते हैं और वसे हास्यास्पद किस्म की संस्कृति (ईनिड ब्लाइटन के उपन्यासों, पॉप संगीत आदि की इमेज) में ढलते चले जाने के सिवा कुछ नहीं कर पाते।

संस्कृतियों के आदान-प्रदान में भाषा की बड़ी अहम भूमिका होती है। जब तक बच्चे किसी भारतीय भाषा को नहीं सीखेंगे तब तक वे भारतीय संस्कृति को समझ भी नहीं सकते हैं।

रोज़लिंड : अंग्रेज़ी की आपकी पुस्तकें भी क्या आपको एक खास सांचे-ढांचे जैसी नहीं दिखतीं?

डेविड : इनके लिए बाज़ार को भी ध्यान में रखना पड़ता है, वर्ना न कोई उन्हें पढ़ेगा और न ही वे स्कूलों में लागू होंगी, और अगर किसी पुस्तक को कोई स्कूल लागू नहीं करता तो प्रकाशक उसे बाज़ार से बाहर निकाल देते हैं। मेरी पुस्तकें भी एक तरह का समझौता तो हैं ही। आप वैसी पुस्तकें नहीं लिख सकते हैं, जैसी आप लिखना चाहते हैं क्योंकि ऐसे में कोई उन्हें खरीदेगा ही नहीं। एक बार मैंने अपनी इच्छा के अनुसार पुस्तकें लिखीं – विज्ञान की पुस्तकें, लेकिन उनकी बाज़ार में मांग नहीं है। मुझे लगता है, इसका कारण यह है कि वे विज्ञान की सामान्य पुस्तकों से बहुत भिन्न हैं।

रोज़लिंड : कैसे?

डेविड : जैसे कि उनमें कई प्रश्न खुले छोड़ दिए गए थे। आप जानती ही हैं कि साधारण विज्ञान की पुस्तकों में एक तरफ मेंढक का चित्र बना होगा और दूसरी तरफ बताया गया होगा कि मेंढक की चार टांगे होती हैं, एक जीभ होती है और वो कीट-पतंगों को खाता है। और पन्ने के पिछले भाग पर सवाल होंगे, एक मेंढक की कितनी टांगे होती हैं? अब बच्चा खाली स्थान को भरकर खुश होगा जैसे कि उसने कोई बड़ा तीर मार लिया हो। और वो अगले पन्ने की ओर बढ़ जाएगा। मेरी पुस्तकें इनसे भिन्न हैं। उनमें बच्चों से चीज़ें तलाश कर उनका मुआयना करने और फिर जो कुछ उन्होंने देखा है उसे दर्ज़ करने को कहा जाता है। विज्ञान में बहुत सारे पहलू होते हैं और उनमें बहुत सारी विविधता की गुंजाइश रहती है। इन दिनों शिक्षा में सही उत्तर बताने को बहुत बड़ी बात मान लिया गया है। मेरी पुस्तकें इस अर्थ में अलग हैं कि उनमें सवालों को खुला छोड़ दिया गया है और वे सही उत्तर से ज़्यादा महत्व खुली बहस को बढ़ावा देने को देती हैं।

रोज़लिंड : पर इस तरह बातचीत और चर्चा के लिए तो बहुत होशियार लोगों की ज़रूरत होती होगी?

डेविड : बच्चे बहुत होशियार होते हैं। आप इन पर बच्चों से बातचीत कर सकती हैं।

रोज़लिंड : तब तो आपके यहां शिक्षकों को भी इस बारे में बहुत संवेदनशील होना चाहिए?

डेविड : बिल्कुल। शिक्षक को संवेदनशील होना ही चाहिए। मेरे विचार से तो ये कुछ ऐसा ही कहना हुआ कि शिक्षक को भी शिक्षित होना चाहिए। वे शिक्षित नहीं हैं इसीलिए तो शिक्षा ठीक से हो नहीं पा रही है।

रोज़लिंड : तो क्या यही वज़ह नहीं है कि लोग मशीनों और वैसी ही अन्य चीज़ों की ओर मुड़ने लगे हैं?

डेविड : दिलचस्प ख्याल है। पर सवाल सिर्फ शिक्षकों का नहीं है, विद्यार्थियों का है, खास तौर पर। आज के दिन भारत में करीब दस करोड़ विद्यार्थी हैं।

रोज़लिंड : रेडियो के बारे में आपका क्या मत है?

डेविड : असल बात तो यह है कि इन स्कूलों में या बच्चों के पास रेडियो है ही नहीं, एक बार मैं देश के एक बहुत बड़े नामी संस्थान में टी.वी. के महत्व पर आयोजित सेमीनार में गया था। मैंने टी वी के बारे में काफी कड़ी टिप्पिणियां की थीं – कि टी.वी. शिक्षा में कैसे एक अच्छे सहायक की भूमिका निभा सकता है जबकि आपके पास एक मात्र टी.वी. स्टेशन दिल्ली में हो। हम यदि प्रत्येक दिन कक्षा को एक घंटे का टी.वी. भी दें तब भी दिन के कम-से-कम दस घंटे देने होंगे, ऐसे में बच्चे क्या करेंगे?

यह ठीक है कि आप टी.वी. पर ध्रुवीय रीछों के और समुद्र के नीचे पानी के खूबसूरत दृश्य दिखा सकते हैं। और इन्हें आप बहुत ज़बरदस्त कार्यक्रम मान सकते हैं। लेकिन आप उनसे कुछ सीख नहीं सकते क्योंकि यह सब पूरी तरह एकतरफा होता है। सीखना दुतरफा होता है (इसमें शिक्षार्थी की भागीदारी ज़रूरी होती है)। टी.वी. एकतरफा माध्यम है और उसमें भागीदारी नहीं हो सकती है। यही इसका खतरा है। आपको लगता है कि आप कुछ सीख रहे हैं लेकिन वास्तव में आप सीख कुछ भी नहीं रहे होते।

रोज़लिंड : डेविड, मुझे लगता है कि पर्यावरण की आपकी अवधारणा भी अधिकांश लोगों की अवधारणा से कहीं अधिक व्यापक है। पर्यावरण अध्ययन पर आपने पुस्तकें भी लिखी हैं।

डेविड : मैंने पर्यावरण संबंधी कुछ पुस्तकें बच्चों के लिए भी लिखी हैं लेकिन उनकी भी बाज़ार में ज़्यादा मांग नहीं है क्योंकि उनमें बच्चों से पर्यावरण अध्ययन की अपेक्षा की गई है जबकि शिक्षक नहीं चाहते कि बच्चे पर्यावरण का अध्ययन करें। वे कुल मिलाकर इतना ही चाहते हैं कि बच्चे पूरे मन से पुस्तकों को याद कर लें। यहां तक कि बहुत अच्छे माने जाने वाले शिक्षक भी किसी पाठ्यपुस्तक का नाश कर देते हैं। दो साल पहले जब मैं दिल्ली आया तो मेरे एक दोस्त ने बताया कि उसकी एक मित्र स्कूल में पढ़ाती हैं, और वहां मेरी पुस्तकें ही लगी हुई हैं और वो मुझसे मिलना चाहती हैं। मैंने कहा ठीक है उन्हें ले आओ। वे नाश्ते पर आईं, तब मैंने पूछा कि पहले आप यह बताएं कि आप स्कूल में क्या करती हैं?

मेरी पुस्तक में पेड़ों के बारे में एक अध्याय है जिसमें कहा गया है कि स्कूल के रास्ते में आप कितने तरह के पेड़ों को देखते हैं? क्या आप उनमें से किसी पेड़ का नाम जानते हैं? क्या आपको उनपर पत्ते दिखाई देते हैं? आप उन पत्तों के चित्रों को अपनी कापी में बनाकर देखिए? तब उन्होंने जवाब दिया। मैं किताब लेकर पढ़ती हूं – पेड़। आप कितनी तरह के पेड़ देखते हैं?

इसके बाद मैं ब्लैकबोर्ड पर पेड़ों के नाम लिख देती हूं और बच्चे उन्हें अपनी कापी में उतार लेते हैं। और अगले दिन मैं पूछती हूं कि बताइए आपने कौन-कौन से पेड़ देखे थे? विश्वास नहीं होता। यह स्थिति तो दिल्ली के एक प्रतिष्ठित स्कूल की है। आप सोच सकती हैं कि दूसरे स्कूलों में क्या होता होगा। पर्यावरण शिक्षा बहुत ज़रूरी है लेकिन शहरों में कोई पर्यावरण का अध्ययन नहीं करता। यहां तक कि आप पूछें कि रिक्षा पर जाते हुए उन्होंने कौन-कौन सी दुकानें देखीं, तब भी वे शायद जवाब न दे पाएं। वे शहरी वातारवण के बारे में कुछ नहीं जानते, न किसी और चीज़ के बारे में और न ही ग्रामीण वातावरण के बारे में।

रोज़लिंड : कुल मिलाकर हालात बहुत भयावह दिखाई देते हैं। आप सकारात्मक हस्ताक्षेप की क्या गुंजाइश देखते हैं?

डेविड : मैं नहीं जानता कि इसका जवाब क्या हो सकता है। मैं सिर्फ इतना कह सकता हूं कि मैं अपने छोटे से गांव में बैठ कर जिसे मैं अच्छी शिक्षा समझता हूं उसके लिए प्रयास करता रहूंगा। कुछ बच्चे जिन्हें इस प्रकार की खुली शिक्षा मिली होगी – जहां भय न हो, प्रतिस्पर्धा न हो, वे जागरूक होंगे। शायद वे इन समस्याओं के हल ढूंढ सकें, जिनके हल मैं अपनी पृष्ठभूमि और सीमाओं के कारण नहीं खोज पाया हूं। ❐❐❐